P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-7, ISSUE-4, May-2019

E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

समाज दर्शन की दृष्टि से मानव एवं समाज के लक्ष्य

पिताम्बर दास
असिस्टेंट प्रोफेसर,
दर्शनशास्त्र विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

सारांश

समाज दर्शन समाज एवं मानव के लक्ष्यों पर दार्शनिक दृष्टि से विचार करता है, जिसमें वह मानव एवं समाज के लक्ष्यों का अध्ययन तात्त्विक एवं सूक्ष्म दृष्टि से करता है। भारतीय एवं पाश्चात्य समाज का अध्ययन करने के बाद समाज दर्शन निष्पक्ष रूप से मानव एवं समाज के लक्ष्यों की पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए अपना समालोचनात्मक मत व्यक्त करता है। समाज दर्शन अपने निष्पक्ष समालोचनात्मक अध्ययन में पाता है कि समाज क लक्ष्य समाज की सरकारी व्यवस्था के अनुसार बदलते रहें है, परन्तु आधुनिक युग में प्रायः विश्व के अधिकांश समाज लोतान्त्रिक लक्ष्यों स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्त्व एवं न्याय में विश्वास करते है और मानव के लक्ष्यों की दृष्टि से विश्व समाज में हमें मानव के लक्ष्य किसी न किसी रूप में भारतीय परम्परा के पुरूषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ही दिखाई देते है।

मुख्य शब्द : समाज, दर्शन, मानव, लक्ष्य, पुरूषार्थ, पाश्चात्य, भारतीय, दार्शनिक, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, व्यक्गित निपुणता, आदर्श, लोकतान्त्रिक, स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्त्व, न्याय, लक्ष्य, परिवार, विवाह।

प्रस्तावना

भारतीय एवं पाश्चात्य चिन्तन का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इस सृष्टि में मानव ही एक ऐसा जीव है जो सार्थक जीवन जीने का प्रयास करता है। सार्थक जीवन जीने के लिए ही मानव ने अपने जीवन के लक्ष्यों की खोज की है। भारतीय दार्शनिकों ने अपने चिन्तन, मनन एवं अनुसंधान के पश्चात् मानव जीवन के चार लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष अर्थात् पुरूषार्थ निर्धारित किये है और उनको प्राप्त करने के लिए जिस समाज की आवश्यकता पड़ती है, उस समाज की व्यवस्था को भी लक्ष्यों की कड़ी में बांधा है। परन्तु पाश्चात्य जगत् में मानव जीवन के लक्ष्य व्यक्तिगत विकास एवं निपुणता को माना गया है जिसमें मानव जीवन की आवश्यकता से सम्बन्धित सभी बातें आ जाती है। प्लेटों ने अपने संवाद में इन्हें सदगुण कहा है अर्थात् मानव जीवन का लक्ष्य अपने सद्गुणों का विकास करना है और सद्गुणो के आधार पर निर्मित सामाजिक व्यवस्था में अपने–अपने वर्ग (शासक, सैनिक एवं पालक) में रहकर समाज के लक्ष्यों को प्राप्त करना। दर्शनशास्त्रीयों एव चिन्तकों ने सृष्टि प्रक्रिया, विश्व एवं जीवन सबको उनके लक्ष्य के साथ देखने का प्रयत्न किया हैं उनके अनुसार यह संसार न कोई आकस्मिक घटना है और न ही उद्देश्यहीन संघटन, अपितु यह एक सुविवेचित, सुविचारित उद्देश्यपूर्ण रचना है, जिसे सोच समझकर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परम्शक्ति ने बनाया है। इस सृष्टि का प्रयोजन भोग एवं पुरूषार्थ की सिद्धि है।

साहित्यावलोकन

प्रस्तुत शोध पत्र को लिखने के लिए मैनें श्यामाचरण दुबे की पुस्तक 'भारतीय समाज' के पृष्ठ संख्या 26 एवं 58 पर से कुछ सामग्री ली है, यह पुस्तक नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया द्वारा वर्ष 2001 में प्रकाशित हुई है। कुछ सामग्री डॉ0 जगदीशसहाय श्रीवास्तव की पुस्तक 'समाज–दर्शन की भूमिका के पृष्ठ संख्या 24–59 तथा 199–205 पर से ली है, यह पुस्तक विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी द्वारा वर्ष–2002 में प्रकाशित हुई है। कुछ सामग्री डॉ0 रामनाथ शर्मा की पुस्तक 'समाज दर्शन' के पृष्ठ संख्या 91–117, तथा 238–251 पर से ली है, यह पुस्तक केदारनाथ रामनाथ एण्ड कं0 मेरठ द्वारा वर्ष 2004 में प्रकाशित है। कुछ सामग्री मैनें जे0 एस0 मेकेन्जी की पुस्तक 'समाज–दर्शन की रूपरेखा' के पृष्ठ संख्या 25–38 पर से ली है, यह पुस्तक जिसके रूपान्तकार डॉ0 अजीत कुमार सिन्हा जी है, वर्ष–2009 में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित है। महत्त्वपूर्ण सामग्री डा0 रामजी सिंह की पुस्तक 'समाजदर्शन के मूल तत्त्व' के पृष्ठ संख्या 22–155 पर से ली है, यह पुस्तक राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर द्वारा 1983 में प्रकाशित हुई है। कुछ सामग्री प्रो0 अशोक

कुमार वर्मा की पुस्तक 'प्रारम्भिक समाज एवं राजनीति दर्शन' के पृष्ठ संख्या 67–92 पर से ली है, यह पुस्तक मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2006 में प्रकाशित है। कुछ सामग्री डॉ0 शिव भानु सिंह जी की पुस्तक 'समाज दर्शन का सर्वेक्षण' के पृष्ठ संख्या 22–57 एवं 87–102 पर से ली गई है, यह पुस्तक शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद द्वारा वर्ष 2001 में प्रकाशित है। कुछ सामग्री मैनें सोशल रिसर्च फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित 'श्रृंखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका' के वो0 5, अंक 10, जून–2018 के पृ0सं0 58–64 पर डॉ0 पिताम्बरदास जी के शोध पत्र 'मानव स्वभाव की उत्पत्ति : एक दार्शनिक विवेचन' से ली है। उक्त फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित शोध पत्रिका 'श्रृंखला एक शोध परक वैचारिक पत्रिका' के वो0 5, अंक–12, अगस्त–2018 में डॉ0 पिताम्बर दास जी द्वारा प्रकाशित शोध पत्र 'संस्थाओं की उत्पत्ति एवं उनके दार्शनिक आधार' में भी कुछ सामग्री विद्यमान है। कुछ सामग्री मैनें उक्त फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित पीरियोडिक रिसर्च में प्रकाशित डॉ0 पिताम्बर दास के शोध पत्र 'समाज दर्शन की प्रकृति एवं अध्ययन क्षेत्र' वो0 7, अंक 02, नवम्बर–2018 के पृष्ठ संख्या 16–20 पर से ली है।

शोध पत्र का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र में मानव एवं समाज के लक्ष्यो को भारतीय एवं पाश्चात्य परम्परा की दृष्टि से दिखाने का प्रयास किया गया है और बताया गया है कि भारतीय एवं पाश्चात्य परम्परा में लगभग एक ही प्रकार के मानव एवं समाज के लक्ष्यों की विवेचना की गयी है और बताने का प्रयास किया गया है कि दोनों परम्पराओं में मानव एवं समाज के लक्ष्य किसी न किसी रूप में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष एवं स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्त्व एवं न्याय को ही माना एवं स्वीकार किया गया है।

मानव जीवन के लक्ष्य

धर्मशास्त्रों के समाज दर्शन में मानव जीवन के लक्ष्यों अर्थात् पुरूषार्थ की अवधारणा अति महत्वपूर्ण है। इसे सामाजिक संरचना, सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक संस्था एवं समाज के समस्त अंगों के मूल आधार के रूप में देखा जा सकता है। यही कारण है कि धर्मशास्त्रों में पुरूषार्थ के विविध पक्षों का उनके परस्पर सम्बन्धों का, उनके प्रकार, उनके आधार पर बने हुए सामाजिक संगठनों के साथ उनके सम्बन्ध आदि का व्यापक विवेचन किया गया है। पुरूषार्थ शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है–पुरूष एवं अर्थ, जिसका तात्पर्य है, ''प्रयोजन, लक्ष्य, साध्य, आदि। पुरूषार्थ के अन्तर्गत धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को जीवन के लक्ष्य अथवा पुरूषार्थ माना जाता है। धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना, आलम्बन देना, पालन करना आदि। अन्यत्र धर्म का शब्द का प्रयोग धार्मिक क्रिया एवं संस्कार से अर्जित गुण के अर्थ में हुआ है। पुनः धर्म शब्द का समस्त धार्मिक कर्त्तव्यों के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः धर्म मानव जीवन के कर्त्तव्यों को बताता है। पाश्चात्य दर्शन की दृष्टि से धर्म मानव स्वभाव के किसी पक्ष विशेष अर्थात् ज्ञानात्मक, संवेगात्मक या भावनात्मक, संकल्पात्मक आदि में से किसी एक पक्ष को महत्व देता है। धर्म के ज्ञानात्मक पक्ष पर हेगेल, मैक्समूलर तथा हरबर्ट स्पेंसर ने विशेष बल दिया है। धर्म के संवेगात्मक या भावनात्मक अर्थात् श्रद्धा, विश्वास आदि पर बल देने वाले चिन्तकों में मार्टिन्यू एवं ई0 वी0 टायलर प्रमुख दार्शनिक है। धर्म के संकल्पात्मक पक्ष के बारे में कान्ट एवं फ्लाइडरेर ने विशेष चर्चा की है। दूसरा पुरूषार्थ अर्थ है, जिसकी परिभाषा करते हुए कहा गया है कि जिससे समस्त प्रयोजनों की सिद्धि होती है वह अर्थ है। चाणक्य ने अर्थ को लोक जीवन का मुख्य प्रवर्तक माना है। अर्थ वह वस्तु है जिसको प्राप्त करने की अभिलाषा सभी करते है। चाणक्य के अनुसार प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है और सुख का मूल धर्म है परन्तु धर्म बिना अर्थ के संभव नहीं है। काम मानव जीवन का तीसरा पुरूषार्थ है जिसका अर्थ इच्छा, कामना, वासना, स्पृहा, तृष्णा, ऐषणा, सुख तथा सुख के साधन आदि माना गया है। काम का स्वरूप बताते हुए महाभारत में कहा गया है कि मन एवं बुद्धि के साथ पाँचों इन्द्रियों का विषयों के साथ जो आनन्द, प्रीति या सुख उत्पन्न होता है वहीं काम है। कामसूत्र में काम की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि अभिमानयुक्त रस से ओतप्रोत समस्त इन्द्रियों की प्रीति, आनन्द या सुख जिससे जिसके द्वारा प्राप्त होता है वह काम है। चौथा पुरूषार्थ मोक्ष है इसे परम पुरूषार्थ भी कहा गया है। मोक्ष का अर्थ है मुच्यते सर्वदुःखबन्धनैर्यत्र सः मोक्षः अर्थात् जिस पद को पाकर जीवन आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक एवं सामाजिक आदि सम्पूर्ण दुःखबन्धनों से मुक्त हो जाता है, उसे मोक्ष कहते है। व्यक्ति समाज के निर्माण में एक इकाई के रूप में हैं। समाज में व्यक्ति की आवश्यकताएँ होती है, उन आवश्यकतों की पूर्ति अति आवश्यक होती है। पुरूषार्थ की व्यवस्था में मानव की सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति की एक उचित व्यवस्था की गयी है। इस व्यवस्था में व्यक्ति और समाज को भिन्न–भिन्न नहीं रखा गया है, अपितु दोनों का सामंजस्य किया गया है। क्योंकि समाज में व्यक्ति की आवश्यकताओं पर पूर्ण नियन्त्रण रखा गया है। मानव का उद्देश्य यही पुरूषार्थ–धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष है। मानव एवं समाज को धर्म के नियन्त्रण में अपनी आर्थिक, वासनाजन्य आवश्यकता करनी है और मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करना आवश्यक माना गया हैं। यह जीवन का परम मूल्य है। यदि अन्य पुरूषार्थ नियन्त्रित ढंग से पूर्ण नहीं होते तो मोक्ष की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सामाजिक आवश्यकता को नैतिक, आर्थिक, जैविक और आत्मिक विकास के रूप में देखा जा सकता है और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही पुरूषार्थ की व्यवस्था दी गयी है। नैतिक आवश्यकता की पूर्ति धर्म पुरूषार्थ से आर्थिक आवश्यकता के लिए अर्थ पुरूषार्थ की जैविक आवश्यकता के लिए काम पुरूषार्थ की एवं आत्मिक उत्कर्ष की आवश्यकता की पूर्ति के लिए मोक्ष पुरूषार्थ की और आत्मिक उत्कर्ष की आवश्यकता की पूर्ति के लिए मोक्ष पुरूषार्थ की व्यवस्था बनाई गयी है, यहां पुरूषार्थ की सामाजिक उपयोगिता दिखाई देती है, जो मानव के लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रमुख साधन है। पुरूषार्थ व्यवस्था में जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जो कमिक व्यवस्था अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की गयी थी, उससे समाज के सामाजीकरण की

P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-7, ISSUE-4, May-2019
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

स्वचालित प्रक्रिया विकसित हो गयी थी। इस व्यवस्था और समाज में स्वतः सद्‌गुणों का विकास होता है। प्रारम्भ में नैतिक शिक्षा, बाद में जैविक और आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति और अन्त में मोक्ष की आवश्यकता की पूर्ति होती थी। यह क्रमिक व्यवस्था स्वचालित कही जा सकती है। पुरूषार्थ सामाजिक नियन्त्रण का बहुत बड़ा आधार है। यह हिन्दू समाज के संगठन का और मानव के व्यवहार का नियन्त्रण करता है। पुरूषार्थ से मानव का परिमार्जन होता है। इसके बताए गए नियमों से चलने पर समाज स्वतः नियन्त्रित रहता है। धर्म का नियन्त्रण मानव के अन्दर शुभ विचारों को बनाए रखने में सहायक होता है। इससे समाज नियन्त्रित रहते हुए अपने लक्ष्यों को प्राप्त करता है।

समाज के लक्ष्य

मानव जीवन के लक्ष्यों के बाद समाज के लक्ष्यों की विवेचना करते हुए कहा जा सकता है कि भारतीय एवं पाश्चात्य चिंतनधारा में राज्य की सरकार अथवा शासन व्यवस्था के अनुसार समाज के लक्ष्य बदलते रहे है। यदि हम मानव जाति की प्राचीन आदिम अवस्था की शासन व्यवस्था पर विचार करे तो उस समय साम्यवादी व्यवस्था दिखाई देती है जिसमें समाज का लक्ष्य समता एवं समानता दिखाई देता है और मनुष्य पूर्ण रूप से स्वतंत्रत एवं बन्धुत्व भावना के साथ एक–दूसरे का सहयोग करते हुए दिखाई देता है। परन्तु पाश्चात्य जगत् में 1857 की औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप यह सामाजिक व्यवस्था बदलती हुई दिखाई देती है क्योंकि उन लोगों ने जिनके पास पर्याप्त धन था, मशीने खरीदकर अपनी–अपनी बड़ी–बड़ी फैक्ट्रीयाँ स्थापित कर ली और मनुष्य की आवश्यकता से सम्बन्धित आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन प्रारम्भ कर दिया, जिसके कारण से हस्तशिल्पकार एवं कारीगरों का धन्दा मन्दा हो गया वे दिन प्रतिदिन बेरोजगार होते चले गये क्योंकि उनकी कार्यकुशलता मशीनों के सामने हार गयी। परिणामस्वरूप ऐसे लोग दिन–प्रतिदिन बरोजगार होते चले गये क्योंकि बाजार में इनके हाथो के द्वारा बनाया गया समान, मशीनों के द्वारा बनाये गये समान के मुकाबले निम्न स्तर का सिद्ध हुआ और उपभोक्ताओं ने मशीनों के द्वारा बने हुए समान को अधिक पसन्द किया और खरीदा। दूसरा कारण यह था कि हाथ से बना हुआ समान महँगा होता है और मशीन से बना सामान सस्ता होता है। स्वाभाविक रूप से उपभोक्ता मशीन के द्वारा बनाये गये समान को ही खरीदेंगा। इन्हीं कारणों से समाज में बेरोजगारी बढ़ने लगी लोगों के पास जीविका का कोई साधन नहीं था और धीरे–धीरे सम्प्रभुता पूँजीपतियो के पास चली गयी। इस स्थिति का भरपूर लाभ लेते हुएँ पूँजीपतियों ने समाज की व्यवस्था एवं उसके लक्ष्य अपने अधिकतम लाभ के अनुसार अधिकतम लाभ एवं सम्पत्ति निर्धारित किये, जिसके लियें उन्होंने शोषण, अन्याय एवं भेद–भाव के नियम एवं कानून बनाने के साथ–साथ स्वार्थ आधारित धर्म की पुनर्रचना की। इसी का नाम पूँजीवाद है जिसका सामाजिक लक्ष्य है अधिकतम लाभ और साधन है अन्याय एवं शोषण और व्यवहारिक तरीका है श्रम एवं वस्तु के उत्पादन के अतिरिक्त मूल्य के अधिकतम अंश को हड़पना और निजी सम्पत्ति, वस्तु के उत्पादन एवं वितरण पर पूर्ण रूप से आधिपत्य।

जब श्रमिक एवं सर्वहारा वर्ग में कार्ल मार्क्स, लेनिन, ऐन्जिल्स एवं डॉ0 अम्बेडकर जैसे बुद्धिजीवी द्वारा पूँजीवाद एवं सामन्तवाद के अन्याय एवं शोषण, भेद–भाव का प्रचार एवं प्रसार किया जाता है तो समाज की नवीन व्यवस्था की माँग को लेकर समाजवादी आन्दोलन का प्रारम्भ हो जाता है जो समता–समानता एवं स्वतंत्रता के मूल्यों पर आधारित साम्यवादी समाज की माँग करता है और उसकी स्थापना के लिये हिंसक एवं अहिंसक दोनों तरीकों को अपनाता है। परिणामस्वरूप साम्यवादी समाज की स्थापना होती है जिसका लक्ष्य होता है समानता एवं स्वतंत्रता के अनुसार व्यक्ति की योग्यता के अनुसार काम एवं आवश्यकता के अनुसार दाम अथवा पारिश्रमिक। इस साम्यवादी व्यवस्था के मुख्य लक्ष्य स्वतंत्रता एवं समता व समानता होते है। साम्यवादी सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था के बाद फासीवाद की स्थापना होती है जिसके लक्ष्य एक दल की सरकार एवं अधिनाकवावद होता है। कालक्रम के अनुसार फिर नाजीवाद अथवा तानाशाही तंत्र की स्थापना होती है जिसका सामाजिक लक्ष्य शक्ति एवं बल होता है जो शक्ति एवं बल के आधार पर एक ही व्यक्ति की शासन व्यवस्था को स्थापित करते है जैसे हिटलरशाही सामाजिक व्यवस्था। समय एवं हेगेल और कार्ल मार्क्स की द्वन्द्वात्मक पद्धति का अनुसरण करते हुए। विश्व के समाजों में एक तंत्र के स्थान पर सभी का तंत्र आता है जिसके मुख्य आधार हॉब्स, लॉक, रूसों की सामान्य इच्छा का विचार एवं अब्राहम लिंकन का विचार कि सरकार, जनता की, जनता के द्वारा और जनता के लिए होनी चाहिए। इसके अलावा प्राचीन प्रोटोगोरस, सुकरात, प्लेटो तथा बुद्ध, महावीर, सन्त कबीर एवं रैदास आदि के विचारों पर आधारित लोकतंत्र की सामाजिक व्यवस्था हमारे सामने आती है जिसमें स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व एवं न्याय को समाज के आदर्श एवं लक्ष्य बनाया जाता है। समाज के इतिहास की दृष्टि से कहीं–कहीं अभिजात्य सामाजिक व्यवस्था के विचार भी मिलते है जिसमें समाज के लक्ष्य व्यक्तिगत विकास एवं निपुणता को माना जाता है। धर्मतान्त्रिक समाज व्यवस्था में समाज का लक्ष्य धर्म का अधिकतम विकास करना होता है। राजतान्त्रिक समाज व्यवस्था में राजा के परिवार का विकास ही समाज का लक्ष्य दिखाई देता है। इनके अलावा साम्राज्यवादी समाज में समाज का लक्ष्य अपने समाज का अधिकतम विस्तार करना होता है। साम्यवादी समाज व्यवस्था में स्वतंत्रता एवं समानता के लक्ष्य को प्राप्त करना सामाजिक व्यवस्था का लक्ष्य होता है। फासीवादी समाज व्यवस्था में समाज का लक्ष्य एक ही दल की शासन व्यवस्था को हिंसा, बल के द्वारा स्थापित करना होता है। नाजीवादी अथवा तानाशाही समाज व्यवस्था में शक्ति के बल पर एक ही व्यक्ति की शासन व्यवस्था को स्थापित करना समाज का मुख्य लक्ष्य होता है। जब सम्प्रभु शक्ति एक के स्थान पर अनेक में बिखर गई, तब समाज के लक्ष्य भी बदल गये अर्थात् सभी की स्वतंत्रता, सभी में समता एवं समानता, बन्धुत्व भाव तथा न्याय के सिद्धान्तों पर आधारित एक नवीन सामाजिक

व्यवस्था हमें दिखाई देती है, जिसमें सरकार बनाने के लिए सभी की सलाह मतदान के माध्यम से ली जाती है, जिसको वर्तमान समय में लोकतन्त्र कहा जाता है। जिसकी सर्वमान्य परिभाषा अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के अनुसार, '' जनता की, जनता के द्वारा, जनता के लिए बनायी गई सरकार को माना एवं स्वीकारा जाता है।'' वर्तमान समय में अधिकांश देशों में लोकतान्त्रिक सामाजिक व्यवस्थायें ही विद्यमान है। यही कारण है कि जब बाबा साहेब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर को भारत का संविधान लिखने का महत्वपूर्ण कार्य दिया गया तो उन्होंने लोकतान्त्रिक व्यवस्था को सबसे उत्तम व्यवस्था मानते हुए भारत का एक लोकतान्त्रि संविधान तैयार किया और यह संविधान स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 26 जनवरी सन् 1950 से भारत में लागू हुआ। इस संविधान की सामाजिक व्यवस्था के मुख्य लक्ष्य स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व एवं न्याय सर्वसम्मति से स्वीकार एवं भारत में लागू है।

मानव के लक्ष्यों की प्राप्ति में विवाह की भूमिका

विवाह एक ऐसी सामाजिक संस्था है, जिसके बिना मनुष्य अपूर्ण माना जाता है अर्थात् विवाह के बाद ही मानव पूर्ण होता है। मानव के अभिजात्य एवं लोकतांत्रिक लक्ष्य विवाह के उपरान्त ही प्राप्त हो सकते है क्योंकि विवाह के बाद ही मानव पंचमहायज्ञ एवं तीन ऋणों से मुक्त हो सकता है। पंचमहायज्ञ एवं ऋणों से मुक्त होने के लिए ही भारतीय परम्परा में गृहस्थ आश्रम को ही मुख्य माना गया है और गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का एक मात्र माध्यम विवाह रूपी संस्कार को माना गया है। विवाह एक ऐसी सामाजिक संस्था है जो मानव के चार पुरूषार्थों अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है। विवाह के बाद ही मानव धर्म रूपी कर्त्तव्यों को जान पाता है और उनका पालन करते हुए धर्म को सिद्ध करता है। धर्म पुरूषार्थ मे मानव के उन कर्त्तव्यों को बताया है जिनको पूरा करना अनिवार्य है जैसे समाज के प्रति कर्त्तव्य, राज्य के प्रति कर्त्तव्य, मानव के प्रति कर्त्तव्य, प्रकृति के प्रति कर्त्तव्य आदि और मानव इन सब कर्त्तव्यों को विवाह के बाद ही जान पाता है। भारतीय दर्शन की दृष्टि से विचार किया जाए तो नास्तिक दार्शनिक परम्परा में चार्वाक दर्शन के अनुसार मानव का लक्ष्य है अधिकतम सुख की प्राप्ति जो विवाह के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। जैन दर्शन के अनुसार अधिकतम नैतिक चरित्र की प्राप्ति जो विवाह रूपी सम्बन्ध में बन्धनें के प्राप्त ही हो पाती है, बौद्ध दर्शन के अनुसार समस्त तृष्णा का नाश अर्थात् निर्वाण की प्राप्ति मानव का लक्ष्य है यह भी गृहस्थ आश्रम के बिना संभव नहीं है। सांख्य दर्शन के अनुसार अपने चैतन्य शुद्ध स्वरूप का ज्ञान ही पुरूष का लक्ष्य है इसमें विवाह की अनिवार्यता कम दिखाई देती है। योग दर्शन के अनुसार योग के अष्ठांगों का पालन करते हुए, कैवल्य शुद्ध चैतन्य स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना ही मानव का लक्ष्य है यह भी विवाह के बिना संभव नहीं है। शुद्ध ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति बताना न्याय–वैषेशिक दर्शनों का लक्ष्य है और इस शुद्ध ज्ञान के तरीके को जानना मानव का लक्ष्य है जिसके लिए विवाह रूपी अनुभव आवश्यक है। मीमांसा दर्शन जिन कर्मकाण्ड़ों की बात करता है उनकों सफल बनाना विवाह के बिना संभव नहीं है क्योंकि अधिकांश यज्ञ एवं अनुष्ठानों में मुनष्य को पत्नी की आवश्यकता पड़ती है। वेदान्त जिस परमार्थ की प्राप्ति को मानव का लक्ष्य मानता है, वह व्यावहारिक जगत् अथवा जीवन के प्राप्त नही किया जा सकता, यहां पर भी विवाह की अनिवार्यता दिखाई देती है। विवाह एक ऐसी केन्द्रीय सामाजिक संस्था है जिसके बिना मानव एवं समाज अपने लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकता। भारतीय समाज की व्यवस्था हो अथवा पाश्चात्य समाज की व्यवस्था दोनों में मानव के लिए विवाह को ही वह सामाजिक संस्था होनो का गौरव प्राप्त है, जिसके बिना मानव अपने जीवन के किसी भी प्रकार के लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता। भारतीय परम्परा के अनुसार विवाह ही वह सामाजिक संस्था है जिसके द्वारा मानव सामान्य एवं विशिष्ट धर्मों का पालन करना सीखता है। पाश्चात्य परम्परा पर ध्यान दिया जाये तो मानव जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति में विवाह ही अनिवार्य भूमिका निभाता है। मानवशास्त्र की दृष्टि से विवाह ही वह संस्था है जिसके द्वारा मानव अपने जीवन के कर्त्तव्यों को सीखता है और उनका पालन करता है। इस प्रकार विवाह हि वह सामाजिक संस्था दिखाई देती है जिसके बिना मानव अपने जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता। पाश्चात्य परम्परा की दृष्टि से विवाह ही एक ऐसी सामाजिक संस्था दिखाई देती है जिसके द्वारा मनुष्य अपने जीवन के सभी भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकता है, जिसे भारतीय परम्परा में अर्थ एवं काम कहा गया है। विवाह से मानव की सामाजीकरण की क्रिया पूरी होती है। विवाह का उद्देश्य समाज का निर्माण और संगठन भी है। मानव का बहुमुखी विकास समाज में ही होता है और समाज के निर्माण के लिए विवाह आवश्यक है। विवाह से मनुष्य की अनेकानेक आवश्यकताएं बढ़ जाती हैं और उनकी पूर्ति के लिए समाज की आवश्यकता होती है। समाज का समायोजन उसके व्यक्तिगत–विकास का ही परिणाम होता है। जिसका व्यक्तित्व जितना ही विकसित होगा, उसका समाज से उतना ही अच्छा समायोजन होगा। इस प्रकार हम कह सकते है कि विवाह ही मानव विकास एवं समाज के लक्ष्यों की प्राप्ति का मुख्य आधार है। विवाह ही सामाजिक संगठन की वृद्धि करता है क्योंकि विवाह दो परिवारों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता है। विवाह पति–पत्नी के रूप में केवल दो व्यक्तियों का ही स्नेह सम्बन्ध नहीं है, अपितु यह समाज की दृष्टि से परिवार के बीच स्नेह स्थापित करता है। इस प्रकार विवाह ही वह मुख्य सामाजिक संस्था है जिसके द्वारा समाज समानता एवं भ्रातत्व जैसे लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है।

निष्कर्ष :– इस प्रकार हम कह सकते है कि मानव एवं समाज किसी भी अवस्था में रहा हो परन्तु उसके लक्ष्य किसी न किसी रूप में एक समान ही रहे है, चाहें वह पश्चिमी समाज रहा हो या भारतीय समाज रहा हो क्योंकि मानव एवं समाज के सार्वभौमिक चार कार्य एवं लक्ष्य ही होते है अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष एवं स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व एवं न्याय और मानव एवं समाज इनकी प्राप्ति के लिए ही सभी प्रकार के कार्य करता है।

P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-7, ISSUE-4, May-2019

E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 पिताम्बर दास, रिमार्किंग, वो0 3, अंक 06, सितम्बर 2018, शोध पत्र शीर्षक– समाज की प्रकृति एवं दार्शनिक आधार।
2. प्रो0 अशोक कुमार वर्मा, प्रारम्भिक समाज एवं राजनीति दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, वर्ष–2006
3. जगदीशसहाय श्रीवास्तव,, समाज दर्शन की भूमिका, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष–2002
4. डॉ0 शिवभानु सिंह, समाज दर्शन का सर्वेक्षण, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, वर्ष–2001
5. डॉ0 रामनाथ शर्मा, समाज दर्शन, केदारनाथ रामनाथ एण्ड क0, मेरठ, वर्ष–1998
6. डॉ0 बी0 एन0 सिन्हा, समाज दर्शन–सामाजिक व राजनीतिक दर्शन, सपना अशोक प्रकाशन, रामनगर, वाराणसी।
7. डॉ0 पिताम्बर दास, शोध पत्र–'मानव स्वभाव की उत्पत्ति' वो0 5, अंक–10, जून–2018, श्रृखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका, सोशल रिसर्च फाउण्डेशन, कानपुर, उ0प्र0 द्वारा प्रकाशित।
8. डॉ0 पिताम्बर दास, शोध पत्र–'समाज की दार्शनिक पृष्ठभूमि' वो0 6, अंक–4, मई–2018, पीरियोडिक रिसर्च पत्रिका, सोशल रिसर्च फाउण्डेशन, कानपुर, उ0प्र0 द्वारा प्रकाशित, पृ0सं0 44–50.
9. राहुल सांकृत्यायन, मानव–समाज, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष–2012
10. जे0 एस0 मेकेन्जी, समाज–दर्शन की रूपरेखा, रूपान्तरकार, डॉ0 अजीत कुमार सिन्हा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, वर्ष–1962
11. संगम लाल पाण्डेय, समाज दर्शन की एक प्रणाली, इलाहाबाद।
12. डॉ0 हृदय नारायण मिश्र, समाज दर्शन–सैद्धांतिक एवं समस्यात्मक विवेचन, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष–2009
13. डॉ0 रामजी सिंह, समाजदर्शन के मूल तत्त्व, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1983
14. डी0 आर0 जाटव, भारतीय समाज एवं विचारधाराएँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, वर्ष–2002
15. हेंड्रिक विलोम फ़ान लून. हिन्दी अनुवाद. अरूण कुमार, प्रकाशन संस्थान, अंसार रोड़, नई दिल्ली, वर्ष–2014
16. डॉ0 पिताम्बर दास, शोध पत्र–संस्थाओं की उत्पत्ति एवं उनके दार्शनिक आधार, श्रृंखला एक शोध परक वैचारिक पत्रिका, वो0 5, अंक–12, अगस्त–2018, सोशल रिसर्च फाऊण्डेशन, कानपुर द्वारा प्रकाशित।
17. डॉ0 पिताम्बर दास, शोध पत्र–समाज दर्शन की प्रकृति एवं अध्ययन क्षेत्र, पीरियोडिक रिसर्च, वो0 7, अंक 02, नवम्बर–2018, सोशल रिसर्च फाउण्डेशन, कानपुर द्वारा प्रकाशित।